ध्यान दें:

7

प्रत्यक्ष खण्ड में पत्यक्ष प्रमाण के भेद

पूर्वपाठ में दर्शन के भेद, प्रमाण तथा प्रमाणों के भेदों के विषय में आलोचन किया गया है। वहाँ प्रत्यक्ष प्रमा क्या है? इसका विस्तार पूर्वक उपस्थापन करके किसी भी ज्ञान के प्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्षत्व का प्रयोजन क्या है। कोई भी विषय यदि प्रत्यक्ष हो तो उसके प्रत्यक्षत्व का प्रयोजन क्या है। और ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व का तथा विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या है इन दोनों विषयों का विस्तार पूर्वक आलोचन किया गया है।

इस पाठ में प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रकार कितने है? इस विषय को प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्तः करण के वृत्ति भेद से बुद्धि,मन,अहङ्कार तथा चित्त इत्यादि नाम कैसे होते हैं। इस विषय का भी सुयुक्ति प्रतिपादन किया जाएगा। प्रत्यक्ष ज्ञान का सविकल्प तथा निर्विकल्प भेद से दो प्रकार से उपस्थापन किया जाएगा तथा तत्वमसि इस महावाक्य में निर्विकल्प ज्ञान किस प्रकार से उत्पन्न होता है इस की भी व्याख्या की जाएगी।

जीव साक्षी तथा ईश्वर साक्षी रूप प्रत्यक्ष भेदों का प्रतिपादन किया जाएगा। प्रसङ्ग से जीव तथा जीवसाक्षी ईश्वर तथा ईश्वरसाक्षी इन दोनों विषयों का भी स्पष्टीकरण किया जाएगा।

प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रकारान्तर से इन्द्रिय जन्य तथा इन्द्रिय अजन्य इस प्रकार से दो भागों मे बाँटा गया है, इसका उपस्थापन करके प्रसङ्ग पूर्वक सन्निकर्ष के भेदों का का भी स्पष्टीकरण किया जाएगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने से आप सक्षम होंगे;

- प्रत्यक्ष सविकल्प तथा निर्विकल्प भेद को जान पाने में,
- प्रत्यक्ष प्रमाण का इन्द्रियजन्य तथा इन्द्रिय अजन्य दोनों भेदों को जान पाने में,
- बुद्धि आदि वृत्तिभेदों को समझ पाने में;
- जीव तथा जीव साक्षी, ईश्वर तथा ईश्वरसाक्षी इस विषय को जान पाने में;

ध्यान दें:

7.1) बुद्ध्यादि

सर्वप्रथम इन्द्रिय का अर्थ से सन्निकर्ष होता है। सन्निकर्ष से अन्तःकरण अर्थात् अर्थ देश में जाता है। वहाँ से अर्थाकार वृत्ति उत्पन्न होती है। उससे प्रमेय चैतन्य तथा प्रमाण चैतन्य में अभेद होता है। तब अर्थ विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। वहाँ चैतन्य अभिव्यञ्जक वृत्ति चार प्रकार की होती है। 1) संशय 2) निश्चय 3) गर्व तथा 4) स्मरणम् भेद से। इसका तात्पर्य है कि वह वृत्ति चार प्रकार के ज्ञान वाली होती है। मैं चिद्रूप हूँ अथवा देह हूँ इस प्रकार का ज्ञान संशय कहलाता है। मैं चिद् रूप ही हूँ, इस प्रकार का ज्ञान निश्चय कहलाता है। गर्व मद होता है। वह अपने उत्कर्ष के ज्ञान से होता है जैसे मैं महात्मा हूँ, धनवान हूँ, मेरे जैसा संसार में कौन है? मैं ही कर्ता हूँ मैं ही भोक्ता हूँ इस प्रकार से। स्मरण ही स्मृति होती है। अतीत में अनुभूत विषय के संस्कार मात्र का ज्ञान स्मृति कहलाती है। इसलिए कहा गया है।

मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तं करणान्तरम।
संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया इमे॥

कारिका का अर्थ संशयाकार अन्तः करण की वृत्ति ही मन है। निश्चयाकार अन्तः करण की वृत्ति ही बुद्धि है। गर्वाकार अभिमानात्मिका अन्तः करण की वृत्ति ही अहङ्कार है तथा स्मृतिविषयाकार अन्तः करण की वृत्ति ही चित्त है। इस प्रकार एक ही अन्तः करण वृत्तिभेद से मन बुद्धि चित्त तथा अहङ्कार चार प्रकार से कहलाता है।

जिनके द्वारा वृत्ति चतुष्टय कही जाती है उनका मत इस प्रकार से है- मन का विषय बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों ही होते हैं। अहङ्कार का विषय तो अनात्म उपयुक्त आत्मा ही है इस प्रकार मन तथा अहङ्कार के विषय भेद से वृत्ति भी दो प्रकार की होती है। बुद्धि का विषय अपूर्व होता है। चित्त का विषय तो पूर्वानुभूत होता है जो पूर्व नहीं होता है इस प्रकार के विषय भेद से यहाँ भी बुद्धि तथा चित्त दो प्रकार के होते है। इस प्रकार से वृत्ति चार प्रकार की कही जाती है।

किन्हीं के मत में बुद्धि दो प्रकार की ही होती है। तब तो अहङ्कार का मन में अन्तर्भाव होता है। तथा चित्त का बुद्धि में अन्तर्भाव होता है। मन संकल्प तथा विकल्पात्मक होता है।अहङ्कार संकल्पात्मक होता है। अतः उसका मन में अन्तर्भाव होता है। बुद्धि निश्चयात्मिका होती है। चित्त भी निश्चयात्म ही होता है।

विवरण सम्प्रदाय के मत में प्रमाण वृत्ति तथा अविद्या वृत्ति इस प्रकार का वृत्तिभेद पहले से ही प्रदर्शित किया जाता है। मन अहङ्कार तथा चित्त प्रमाणवृत्ति नहीं होता है। ये अविद्या कि वृत्तियाँ होती है। इसलिए चार प्रकार के वृत्तिभेद से भी वे सम्भव नहीं होते हैं। दोनों भेद भी सम्भव नहीं होते है यह भी समझना चाहिए।

7.2) प्रत्यक्षज्ञान के प्रकार

विविध प्रकार से प्रत्यक्ष ज्ञान के भेद प्रतिपादित किये जाते हैं उनका यहाँ पर क्रम से उपस्थापन किया जा रहा है।

7.2.1) प्रथम प्रकार

प्रत्यक्ष ज्ञान सविकल्प तथा निर्विकल्प भेद से दो प्रकार का होता है।

ध्यान दें:

सविकल्प ज्ञान

वैशिष्ट्य अवगाहि ज्ञान सविकल्प ज्ञान (संसर्गावगाहि ज्ञान) कहलाता है। विशेष्य तथा विशेषण का सम्बन्ध (संसर्ग) ही वैशिष्ट्य कहलाता है। वैशिष्ट्य अर्थात् संसर्ग का जो अवगाहन करता है उनके विषयों को ग्रहण करता है वह वैशिष्ट्यावगाहि अर्थात् संसर्गावगाहि ज्ञान कहलाता है। विशिष्टत्व के द्वारा कल्पित ज्ञान विकल्पात्मक ज्ञान होता है। वह ज्ञान विशेषण तथा विशेष्य के सम्बन्ध विषयक ज्ञान होता है। अर्थात् जिस ज्ञान में वैशिष्ट्य भासित होता है वह सविकल्पक ज्ञान कहलाता है। तथा विशेषण का प्रकार भी कहलाता है।

घटत्व विशिष्ट घट जब यह वाक्य होता है। तब घटत्व वैशिष्ट्य को घट में रूपों के द्वारा प्रकटित कर सकते है। यहाँ पर घट वैशिष्ट है यह वैशिष्ट्य घटत्व का घट के साथ सम्बन्ध विशेष है न की कुछ और,यहाँ पर घटत्व प्रकार होता है।

यह घट है इस प्रकार से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस ज्ञान में घटत्व विशेषणत्व से भासित होता है। तथा घट विशेष्यत्व से भासित हो रहा है। इस प्रकार से घट तथा घटत्व में तादात्म्य सम्बन्ध भासित हो रहा है। यह सम्बन्ध ही वैशिष्ट्य कहलाता है। इसलिए इस ज्ञान में वैशिष्ट्य भासित होने के कारण यह सविकल्पात्मक ज्ञान है। जिस ज्ञान में प्रकार प्रकारत्व से भासित होता है वह ज्ञान भी सविकल्पात्मक ज्ञान कहलाता है। अर्थात् प्रकार के साथ ज्ञान सविकल्पात्मक ज्ञान होता है।

मैं इस घट का ज्ञानवान हूँ, यह अपर उदाहरण दिया जाता है। इस ज्ञान में घट विषयक ज्ञान विशेषणत्व से भासित होता है। तथा आत्मा विशेष्यत्व से भासित होती है। उन दोनों में तादत्म्य सम्बन्ध भी भासित होता है। इसलिए यह ज्ञान सविकल्पक ज्ञान कहलाता है।

निर्विकल्पक ज्ञान

संसर्ग अनवगाहि ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान कहलाता है। जैसे वह यह देवदत्त है, वह तुम हो इत्यादि।

आगम प्रमाण से शब्द प्रमाण से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह शाब्द ज्ञान कहलाता है।

सामान्यत: शाब्दज्ञान संसार्गावगाहि ज्ञान होता है अर्थात् सविकल्प होता है। परन्तु वह यह देवदत्त है इत्यादि स्थानों में यह ज्ञान निर्विकल्प होता है। यह ज्ञान कैसे निर्विकल्प होता है इसका नीचे से उपस्थापन किया जाएगा। महावाक्य के पदार्थ के शोधन में इसका महान् उपयोग होता है।

सोऽयं देवदत्तः इति वाक्याद् निर्विकल्पकं ज्ञानम्

(वह यह देवदत्त है इस वाक्य से निर्विकल्पक ज्ञान होता है)

देवदत्त के सम्मुख स्थित चैत्र भी सन्देह में है कि जो यह सम्मुख स्थित पुरुष है वह देवदत्त है या नहीं। अथवा सम्मुख स्थित पुरुष देवदत्त नहीं है, इसक प्रकार के भ्रम से ग्रसित हो जाता है। उस चैत्र से मैत्र कहता है कि वह यह देवदत्त है। इस वाक्य से चैत्र की प्रमा उत्पन्न होती है। अत: वाक्य जन्य यह ज्ञान शाब्दज्ञान कहलाता है।

जब चैत्र वाक्य को सुनता है तब (आदौ तत्-पदेन तद्देश-तत्कालविशिष्टः इति, इदंपदेन एतद्देश-एतत्कालविशिष्टः इति, देवदत्तपदेन देवदत्तव्यक्तिः इति, सः अयम् इति द्वयोः पदयोः समाना विभक्तिः, अतः अभेदः इति एते चत्वारः अर्थाः उपतिष्ठन्ते।)

आदि में तत् इस पद से वह देश तथा वह काल विशिष्ट, इदं इस पद से यह देश,यह काल

पाठ-7

प्रत्यक्ष खण्ड में पत्यक्ष प्रमाण के भेद

ध्यान दें:

विशिष्ट, देवदत्त पद से देवदत्त व्यक्ति। सः तथा अयम् इन दोनों पदों में समान विभक्ति है, इस प्रकार से अभेद होने से चारों अर्थ यहाँ पर उपस्थित होते हैं। उपस्थित इन पदार्थो का उनका आकाङ्क्षादिवश परस्पर अन्वय होता है। तब वह देश तथा उस काल से विशिष्ट देवदत्त तथा यह देश एवं इस काल विशिष्ट देवदत्त इस प्रकार का वाक्य बोध उत्पन्न होता है। इस प्रकार से यहाँ पर एतद् (यह) देश तथा एतद् काल विशिष्ट दोनों के विरोध होने से सम्भव नहीं होता है। अतः यहाँ पर मुख्यार्थ का बोध होता है। तब चैत्र मैत्र के तात्पर्य को समझकर 'लक्षणा' करता है। लक्षणा में विरुद्ध दोनों अंशो का त्याग करता है, तथा केवल देवदत्त का स्वरूप मात्र ग्रहण करता है अर्थात् उससे देवदत्त व्यक्ति मात्र का बोध होता है। इस ज्ञान में संसर्ग विषयी नहीं होता है। इसलिए यह ज्ञान संसर्गानवगाहि ज्ञान कहलाता है। इसलिए यह निर्विकल्पक होता है। यह ज्ञान शब्द से उत्पन्न होता है इसलिए इसे शाब्द ज्ञान कहते हैं फिर भी यह संसर्ग का अवगाहन नहीं करता है। जैसे देवदत्त पास में है, सामने है, इसलिए यह ज्ञान देवदत्त विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसलिए इस ज्ञान को निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। देवदत्त में प्रत्यक्ष योग्यत्व, वर्तमानत्व, देवदत्ताकार वृत्ति उपहित प्रमातृ चैतन्य सत्तातिरिक्त सत्तात्व शून्यत्व है इसलिए देवदत्त प्रत्यक्ष विषय ही है।

तत् त्वमसि इति महावाक्यात् निर्विकल्पकं ज्ञानम्

वह तुम हो इस महावाक्य के पद से निर्विकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे सर्व प्रथम तत् त्वम् असि इस का अधिकारी वाक्य का श्रवण करता है। वहाँ पर दोनों पद ही प्रथमा विभक्ति से युक्त हैं इसलिए दोनों पदों के समानाधिकरण की उपस्थिति होती है। वहाँ पर 'तत्' इस पद से सर्वज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य इस अर्थ की उपस्थिति होती है। 'त्वम्' पद से अल्पज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य के अर्थ के उपस्थिति होती है। प्रथमा विभक्ति के कारण अभेद की उपस्थिति होती है। अतः वहाँ पर सर्वज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य अल्पज्ञविशिष्ट चैतन्य से अभिन्न होता है इस प्रकार विशिष्ट दोनों चैतन्यों में अभेद बोध उत्पन्न होता है। लेकिन जिस चैतन्य में सर्वज्ञत्व होता है उसमें ही अल्पज्ञत्व भी सम्भव नहीं होता है। इसलिए प्रतिसन्धान करने पर दोनों के विरुद्ध धर्म तथा विशिष्ट चैतन्य विषयक अभेद ज्ञान भी बाधित होता है। तब लक्षणा के विरुद्ध अंशो का त्याग करके चैतन्य मात्र विषयक अधिकारी का बोध उत्पन्न होता है। इस ज्ञान में संसर्ग भासित नहीं होता है। इसलिए यह संसर्ग विषयक नहीं होता है। यह ज्ञान संसर्ग अनवगाहि निर्विकल्पक होता है। इस प्रकार से यह प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसलिए यह निर्वकल्प प्रत्यक्ष का उदाहरण है।

इस प्रकार से वह तुम हो इत्यादि वाक्यों के द्वारा उत्पन्न ज्ञान संसर्ग का विषय नहीं होता है। इसलिए उनके द्वारा अखण्डार्थ प्रतिपादित होता है यह कहा जाता है। इस प्रकार यह वाक्यों का अखण्डार्थ प्रतिपादक कहलाता है।

इस प्रकार अब तक प्रत्यक्ष ज्ञान के सविकल्प तथा निर्विकल्प दोनों भेदों का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद में दूसरे प्रकार का उपस्थापन किया जा रहा है।

वह प्रत्यक्ष ज्ञान जीव तथा ईश्वर के सम्बन्ध से दो प्रकार का होता है। तथा फिर जीव साक्षी तथा ईश्वर साक्षी के भेद से दो प्रकार का होता है।

जीव कौन है? तथा जीवसाक्षी कौन है? ईश्वर कौन है? तथा ईश्वर साक्षी कौन है? इस ज्ञान के बिना प्रत्यक्ष के भेदों को समझना कठिन है। अतः वह विषय भी यहाँ पर उपस्थापित किया जा रहा है।

प्रमाण विषयक प्रथम पाठ में उपलक्षण तथा उपाधि विशेषण इन शब्दों की सविस्तार पूर्वक आलोचना की गई है। उसका यहाँ पुनः स्मरण अपेक्षित है। उपाधि तथा विशेषण के सम्यक् ज्ञान के विना जीव तथा ईश्वर के विषय में समझना कठिन है।

ध्यान दें:

जीव

जीव कौन है? अथवा जीवत्व किसका है? इसका निर्णय करना चाहिए।अन्त: करण जड होता है, उसमें जीवत्व सम्भव नहीं होता है, तथा शुद्ध चैतन्य निर्विकार होता है। इसलिए उसमें भी जीवत्व सम्भव नहीं होता है। लेकिन कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व अभिमानी अहं पद का वाच्य तो किसी जीव का ही स्वीकार करना चाहिए। न तो केवल चैतन्य का अहं (मैं) पद वाच्य होता है, तथा न केवल जीव का अहं पद वाच्य होता है। उन दोनों के मिलने से ही अहं पदवाच्य होता है। जीवत्व केवल चैतन्य में ही नहीं होता वह अन्त: करण में भी होता है ऐसा कहा भी जा चुका है। न की समग्र चैतन्य में जीवत्व का अन्वय होता है। केवल अन्त: करण से अवच्छिन्न चैतन्य में ही जीवत्व का अन्वय होता है। अत: अन्त: करण वर्तमान होने पर चैतन्य का व्यावर्तक होता है। और अन्त: करण का जिस चैतन्य से सम्बन्ध होता है, उस चैतन्य का व्यावर्तन किया गया है।उस चैतन्य का ही विधेय जो जीवत्व है वह उसके द्वारा भी अन्वित होता है। अत: यह अन्त: करण विशेषण होता है। विशेष ही यहाँ अवच्छेदक कहलाता है। इस प्रकार से अन्त: करणावच्छिन्न चैतन्य जीव कहलाता है।

जीवसाक्षी

चैतन्य ही विषय का अवभासक तथा विषय का प्रकाशक होता है। अन्त: करण तो जड होता है। अत: वह उस विषय का अवभासक नहीं हो सकता है। यदि शुद्ध चैतन्य ही विषय अवभासक हो तो सदा विषय प्रकाश होता है। लेकिन विषय ज्ञान कभी उत्पन्न होता है कभी नहीं। इसलिए शुद्ध चैतन्य का विषय अवभासकत्व अन्त: करण के सम्बन्ध से होता है। अन्त: करणोपहित चैतन्य ही विषय अवभासक है अर्थात साक्षी है। विषय अवभासकत्व का अन्वय साक्षित्व का अन्वय चैतन्य में ही होता है न की अन्त: करण में। वह चैतन्य केवल अन्त: करण के द्वारा ही व्यावृत्त न की सकल (सकल कार्यों से)। इसलिए अन्त: करण वर्तमान होता हुआ चैतन्य का व्यावर्तक होता है। लेकिन साक्षित्व जो विधेय होता है उसका अन्वय चैतन्य में ही होता है न की अन्त: करण में, अन्त: करण तो कैसे भी साक्षी नहीं होता है। अत: अन्त: करण चैतन्य की उपाधि है न की विशेषण। इस प्रकार अन्त: करणोपहित चैतन्य जीवसाक्षी कहलाता है। प्रत्येक शरीर में अन्त: करण भिन्न होता है अत: प्रत्येक अन्त: करण के द्वारा उपहित चैतन्य भी भिन्न ही होता है। इसलिए जीवसाक्षी प्रत्येक शरीर मे भिन्न होता है। चैत्र जिस विषय का अनुभव करता है उस विषय का चैत्र ही स्मरण करता है न की मैत्र। इसलिए प्रति शरीर में साक्षी भी भिन्न ही होता है।

भले ही एक ही चैतन्य को जीव तथा जीवसाक्षी दोनों ही कहा गया है फिर भई चैतन्य तो एक ही होता है। वह इस प्रकार से जैसे देवदत्त पाचक है,देवदत्त पाठक है इस प्रकार दो वाक्य बनते है। यहाँ पर पाचकत्व से पाठकत्व भिन्न ही होता है। फिर भी उन दोनों का आश्रय देवदत्त एक ही होता है। इसी प्रकार जीवत्व से भी साक्षित्व भले ही भिन्न हो फिर भी उन दोनों का आश्रय चैतन्य एक ही होता है।

ईश्वर तथा ईश्वर साक्षी

माया एक अचेतन अनादि तथा जड़ है। उससे अवच्छिन्न चैतन्य ही परमेश्वर है। जब माया चैतन्य की विशेषण होती है तब माया अवच्छिन्न चैतन्य परमेश्वर कहलाता है। जब माया चैतन्य की उपाधि होती है तब माया अवच्छिन्न चैतन्य साक्षी कहलाता है। माया अनादि होती है अत: उससे अवच्छिन्न चैतन्य ईश्वर भी अनादि होता है। माया एक होती है। इसलिए ईश्वर भी एक ही होता है। ईश्वर का ईश्वरत्व से विलोप होता है। जब चरम जीव का मोक्ष होता है तब ईश्वर का नाश होकर के उसकी माया से निवृत्ति हो जाती है। कुछ ईश्वर की शुद्ध ब्रह्म से अवस्थिति हो जाती है।

ध्यान दें:

ईश्वर

शुद्ध चैतन्य जगत् की सृष्टि संहारादि नहीं करता है। वह तो माया अवच्छिन्न चैतन्य ही करता है। जगत् का नियन्तृत्व तथा कर्मफल का नियन्तृत्व ईश्वर ही होता है। ईश्वरत्व चैतन्य में विधेय रूप में होता है। परन्तु माया का सम्बन्ध जिस चैतन्य में होता है उसमें विधीयमान ईश्वरत्व धर्म भी माया का ही अन्वय होता है। इसलिए यहाँ माया ही विशेषण होती है।

ईश्वरसाक्षी

शुद्ध चैतन्य साक्षी नहीं होता है। माया के सम्बन्ध से ही उसमें साक्षित्व सम्भव होता है। साक्षित्व चैतन्य में विधेय के रूप में होता है। लेकिन माया का सम्बन्ध जिस चैतन्य में होता है उसमें विधियमान इस साक्षित्व धर्म में माया का अन्वय नहीं होता है। इसलिए यहाँ पर माया उपाधि होती है। माया जड होती है। इसलिए उसमें साक्षित्व तथा जगत् का प्रकाशकत्व सम्भव नहीं होता है। इसलिए उसमें उसका अन्वय नहीं होता है।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर

माया त्रिगुणात्मिका होती जैसे गीता में कहा गया है

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। इस प्रकार से यहाँ पर गुण पद का अर्थ रस्सी है न की नीलत्वादि गुण। जैसे रस्सी बांधती है उसी प्रकार गुण भी बांधते है, इसलिए उनकी गुणपदवाच्यता है। जब सत्वगुणप्रधान माया से उपहित चैतन्य होता है, तब वह विष्णु: इस प्रकार से कहा जाता है। जब रजोगुणप्रधान माया से उपहित चैतन्य होता है तब वह ब्रह्मा कहा जाता है। तथा जब तमोगुण प्रधान माया से उपहित चैतन्य होता है तब वह महेश्वर कहा जाता है। उपाधि निष्ठ गुण भेद से उपहित के भेद की भी कल्पना की जाती है। वस्तुत: वह ईश्वर एक ही होता है।

इस प्रकार जीव जीवसाक्षी तथा ईश्वर ईश्वरसाक्षी ये चैतन्य के चार भेद होते है।

घट को मैं जानता हूँ। इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है, इस ज्ञान में घट, घटज्ञान,ज्ञाता जीव ये तीन विषय होते हैं। लेकिन जीव का वेत्ता जीव नहीं होता है, तथा ना ही घट घटविषयक ज्ञान वाला होता है। इसलिए जीव के वेत्ता तथा साक्षी इस रूप को अङ्गीकार करते हैं। साक्षी स्वयं प्रकाश होता है। उसके ग्रहण करने पर फिर अपर ग्राहक की कल्पना करना अनुचित अनावश्यक तथा अनवस्थाजनक होता है।

जीव का तथा साक्षी का सविकल्पक तथा निर्विकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है। उसी प्रकार ईश्वर का तथा ईश्वरसाक्षी का होता है। अत: सविकल्प तथा निर्विकल्प ज्ञान चार भागों में बाँटा जाता है।

सविकल्पकम- 1) जीव सविकल्पक 2) जीवसाक्षि सविकल्पक 3) ईश्वर सविकल्पक 4) ईश्वर साक्षी सविकल्पक। यहाँ पर जीवादि ज्ञाता होते हैं न की विषय होते हैं।

निर्विकल्पक- 1) जीव निर्विकल्पक 2) जीव साक्षी निर्विकल्पक 3) ईश्वर निर्विकल्पक 4) ईश्वर साक्षी निर्विकल्प यहाँ पर जीवादि ज्ञाता होते हैं न की विषय।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न 7.1

1. चैतन्य अभिव्यञ्जिका वृत्ति कितने प्रकार की होती है, तथा कौन-कौन सी होती है?
2. बुद्धि क्या होती है?
3. अहङ्कार क्या होता है?
4. चित्त क्या होता है?
5. मन किसे कहते हैं?
6. मनो बुद्धिरहङ्कार इस कारिका को लिखिए।
7. वृत्ति चतुष्टय वादियों के मत में बुद्धि तथा चित्त में भेद का कारण क्या है?
8. वृत्ति चतुष्टयवादियों के मत में मन तथा अहङ्कार में भेद का कारण क्या है?
9. सविकल्पक ज्ञान किसे कहते हैं?
10. यह घट इस सविकल्पक ज्ञान में क्या भासित होता है?
11. घट का ज्ञानवान मैं, इस सविकल्पक ज्ञान में क्या वैशिष्ट्य भासित होता है?
12. निर्विकल्पक ज्ञान का लक्षण क्या है?
13. वह यह देवदत्त है इस वाक्य से सविकल्पक अथवा निर्विकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है?
14. तत्वमसि इस महावाक्य से सविकल्पक अथवा निर्विकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है?
15. जीव कौन है?
16. जीव साक्षी कौन है?
17. जीव साक्षी प्रत्येक शरीर में एक है अथवा अलग अलग?
18. ईश्वर कौन है?
19. ईश्वर का साक्षी कौन है?

7.2.2) दूसरा प्रकार

प्रत्यक्ष ज्ञान फिर प्रकारान्तर से इन्द्रियजन्य तथा इन्द्रिय अजन्य

के भेद से दो प्रकार का होता है। अन्त: करण तथा तद्वृत्ति सुखादि धर्म इन विषयों के ज्ञान में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उनके विषयों के साथ संबंध के अभाव से कारण नहीं होती हैं। अत: इनके ज्ञान के लिए इन्द्रियजन्य प्रमाणवृत्ति उत्पन्न नहीं होती है। वहाँ केवल अविद्यावृत्ति ही उत्पन्न होती है। उस वृत्ति के द्वारा सुखादि प्रत्यक्षों का ज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिए यह प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय अजन्य ज्ञान कहलाता है।

इन्द्रिय का विषय के साथ सम्बन्ध जो ज्ञान का जनक होता है वह सन्निकर्ष कहलाता है, ऐसा

पाठ-7

प्रत्यक्ष खण्ड में पत्यक्ष प्रमाण के भेद

ध्यान दें:

पूर्व में भी कहा जा चुका है। उसका ही अब नीचे से विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

सन्निकर्ष

इन्द्रिय का विषय से सम्बन्ध होता है तो वृत्ति उत्पन्न होती है। उस वृत्ति के द्वारा विषय चैतन्य अभिव्यक्त होता है। इन्द्रिय तथा विषय का उसी प्रकार का सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है।

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, घ्राण तथा जिह्वा यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं। वे अपने स्थान में स्थित शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध के साथ सम्बन्ध को जन्म देती हैं। ज्ञान के प्रत्यक्षत्व के विषय में प्रत्यक्षत्व में सन्निकर्ष ही हेतु होता है। उस सन्निकर्ष का क्या स्वरूप होता है यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

कौन से विषय प्रमेय कहलाते हैं- घटादि विषय, इन्द्रिय तथा द्रव्य प्रमेय होते हैं। रूप रसादि गुण होते हैं। जातिगुण कर्मादय द्रव्य भिन्न होते हैं। जाति द्रव्यात्मिका होती है। वे गुणादि द्रव्य मे तादात्म्य सम्बन्ध से होते हैं। वह तादात्म्य सम्बन्ध ही अभेद सम्बन्ध कहलाता है। गमानादि क्रिया होती है। क्रिया तथा द्रव्य में तादात्म्य सम्बन्ध से होती है। गुण में गुणत्व रूप में रूपत्व तथा क्रिया में क्रियात्व सामान्य होता है। वह तादात्म्य सम्बन्ध से गुणादियों में होते हैं।

यदि इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष हो तब ही वह विषयाकार वृत्ति उत्पन्न होती है नहीं तो नहीं होती है। जब अर्थ घटादि द्रव्य होता है, तब दोनों द्रव्यों का संयोग सम्बन्ध होता है तथा इस न्याय से घटादि द्रव्यों का इन्द्रिय के साथ संयोग सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है। इसलिए द्रव्याकार वृत्ति के प्रति संयोग सन्निकर्ष ही कारण होता है।

गुण से साथ तथा क्रिया के साथ इन्द्रिय का संयुक्ततादात्म्य सम्बन्ध होता है। क्योंकि इन्द्रियसंयुक्त जो द्रव्य होता है इस द्रव्य में तादात्म्य सम्बन्ध से गुण होता है। जब इन्द्रिय का गुणादियों के साथ संयुक्ततादात्म्यसम्बन्ध होता है। तब गुणाकार तथा कर्माकार वृत्ति उत्पन्न होती है। द्रव्य में तादात्म्य सम्बन्ध से वर्तमान जो गुणादि होते हैं। वे तदाकारवृत्ति के प्रति संयुक्ततादात्म्यसन्निकर्ष कारण रूप में होते हैं।

द्रव्य में गुण तथा तादात्म्यसम्बन्ध से (अभेदसम्बन्ध से) होता है। गुण में गुणत्व तादात्म्य सम्बन्ध से होता है। इन्द्रिय का गुणत्व के साथ संयुक्ताभिन्न तादात्म्य सम्बन्ध होता है। इन्द्रिय संयुक्त द्रव्य होता है। वहाँ अभेद से गुण होता है इसलिए द्रव्य भिन्न गुण होता है। द्रव्यभिन्न गुण में गुणत्व का तादात्म्य सम्बन्ध के कारण है। अत: इन्द्रिय का गुणत्व के साथ संयुक्त अभिन्न तादात्म्य सम्बन्ध होता है। जब इस प्रकार सम्बन्ध होता है, तब गुणाकार वृत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए गुणत्व आकार वृत्ति के प्रति संयुक्त अभिन्न तादात्म्य सन्निकर्ष कारण होता है।

भले ही द्रव्यादि में अभाव होता है फिर भी अभाव विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। क्योंकि अभावाकार वृत्ति का उदय नहीं होता है। चक्षु तेज का स्वभाव होता है। इन्द्रिय विषयदेश को जाती है अथवा नहीं इस प्रकार से विषय में अनेक मतभेद होते हैं। जो इन्द्रिय विषयदेश को जाती है उस इन्द्रिय का प्राप्यकारित्व होता है इस प्रकार से कहा जाता है। जो इन्द्रिय विषय देश में नहीं जाकर के विषय को ग्रहण करती है उस इन्द्रिय का अप्राप्य कारित्व होता है। उन में से एक मत का यहाँ पर उपस्थान करते हैं।

सन्निकृष्ट घटादि तथा प्रकृष्ट पर्वतादि होते हैं। चक्षु का स्वरूप तेज होता है। इसलिए बहुत जल्दी विषय देश को जाकर के विषयाकार हो जाती है ऐसा कहा जा सकता है। लेकिन सूर्य बहुत दूर होता है। जब हम सूर्य को देखते है तब क्या आँखे सूर्यदेश को जाती हैं और क्या उसकी किरणें हमारे देश

ध्यान दें:

में आती है। यदि आँखे सूर्यदेश को चली जाती हैं तो वह जहाँ होती हैं, यदि इस प्रकार का चिन्तन करें तो वहाँ नहीं होती है अपितु वहाँ से करोड़ों योजना दूर होती हैं। इसलिए जिस देश में सूर्य है ऐसा चिन्तन करें तो यह भ्रान्ति ही होती है। सूर्य में ही अङ्गीकार कर लिया जाए तो सूर्य की प्रतीति सूर्य के स्थान में ही हो। तो वैसा नहीं होता है। जितने काल में सूर्य की किरण हमारें देश में आती हैं उस काल से पूर्व सूर्य जहाँ था वही प्रतीत होता है। न की ज्ञानकाल में जहाँ होता वहाँ।

कुछ चमकने वाले तारे आदि बहुत दूर होते हैं। उनसे प्रकाश के यहाँ आनें में प्रकाश वर्ष इस प्रकार का समय परिमाण होता है। अर्थात् जहाँ पर यह हम देखें तो वहाँ नहीं होता है, उस स्थान के समीप भी नहीं होता है। कदाचित विनष्ट भी हो जाता है। इसलिए जो विनष्ट पदार्थ स्वस्थान में नहीं होता है, उस को उस देश में कैसे देख सकते हैं। इसलिए चक्षु विषय देश में नहीं जाती है।

श्रोत्र (कान) भी विषय देश को नहीं जाते हैं। चक्षु का स्वभाव तो तेज होता है इसलिए कभी देशान्त चली भी जाती है ऐसा कह भी सकते है। लेकिन शब्द तो कभी पास में होता है और कभी दूर। इसलिए दूर जाकर के शब्द श्रवण एक स्थान से कैसे हो सकता है। यदि शब्दोत्पत्तिदेश से कोई संकेत श्रोतपर्यन्त आता है ऐसा कहा जाए तो शब्द भी आता है, अथवा शब्द ही वह संकेत होता है इस प्रकार अङ्गीकार करनें मे भी लघुता आ जाती है। श्रोत्र सभी जगह व्याप्त होता है तथा इसे शब्ददेश प्रति जाने के लिए उद्बोधक की भी अपेक्षा नहीं होती है,यह भी नहीं कहा जा सकता है। नहीं तो समीपस्थ तथा दूरस्थ शब्दों का एक साथ श्रवण हो, तो वह तो नहीं होता है। जैसे दूर एक बढई लकड़ी को काटता है, उसका कुल्हाड़ी से उत्पन्न शब्द सुनाई देता है। लेकिन जब कुल्हाड़ी से शब्द उत्पन्न होता है उसी क्षण वह सुना नहीं जाता है अपितु उसका विलम्ब से ग्रहण होता है। जैसे आकाश में जो यान चलते हैं उनका शब्द महान विलम्ब से सुना जाता है। अगर हम शब्द की दिशा में विमान को देखे तो वो वहाँ पर नहीं होता है। अपितु बहुत दूर होता है। जिस शब्द को सुनते हैं श्रवण काल में उस शब्द के उत्पत्ति स्थान में न तो विमान होता है और न शब्द।

और यदि विषयदेश (विषय स्थान) में ही शब्द सुना जाता है ऐसा माने तो दूर स्थित व्यक्ति के कान जब उस शब्दोत्पित्ति देश की और जाते हैं तब अवश्य ही वहाँ है ऐसा मानना चाहिए। लेकिन यदि दूरस्थ व्यक्ति के श्रवण काल में शब्दोत्पत्ति देश में शब्द होता तो शब्दोत्पत्ति स्थान में समीप ही स्थित व्यक्ति दूरस्थ व्यक्ति का एक ही साथ शब्द सुने। परन्तु ऐसा नहीं होता है। समीपस्थ शब्द को पहले सुनता है तथा दूरस्थ को बाद में। इसलिए श्रोत्र विषय देश को नहीं जाते हैं।

इसी प्रकार यदि और भी इन्द्रियाँ विषयदेश को नहीं जाकर के ही विषयों को ग्रहण करती हैं तो दोनों इन्द्रियों का (कान आँख) विषयस्थान में गमन तथा अन्य इन्द्रियों का आगमन इस प्रकार विषमता उत्पन्न हो जाती है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. प्रत्यक्ष ज्ञान का दूसरे प्रकार से विभाग लिखिए।
2. सुखादि के ज्ञान में वृत्ति क्या कहलाती है?
3. इन्द्रिय जन्य ज्ञान क्या होता है?
4. घट गन्ध तथा प्रत्यक्ष के ज्ञान में क्या सन्निकर्ष होता है?

ध्यान दें:

5. गुणत्व के ग्रहण में क्या सन्निकर्ष होता है?

6. अभाव के ग्रहण में क्या सन्निकर्ष होता है?

पाठ सार

इस पाठ में प्रत्यक्ष प्रमाण के विविध प्रकारों का आलोचन किया गया है। वहाँ ही प्रसङ्ग बस अन्तः करण के वृत्ति भेद से बुद्धि, मन, अहङ्कार तथा चित्त इस प्रकार के नाम कैसे होते हैं इसका भी उपस्थापन किया गया है। प्रत्यक्ष ज्ञान के सविकल्प तथा निर्विकल्प भेद से दो प्रकार होते हैं। जीवसाक्षी तथा ईश्वरसाक्षी इस रूप से भी प्रत्यक्ष का भेद बताया गया है। वहाँ क्रम प्राप्त तत्वमसि इस महावाक्य से कैसे निर्विकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है, इसकी व्याख्या की गई है। तथा प्रसङ्गानुसार जीव तथा जीवसाक्षी, ईश्वर तथा ईश्वरसाक्षी इस विषय में भी विस्तार पूर्व आलोचन किया गया है।

प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकारान्तर से इन्द्रियजन्य तथा इन्द्रिय अजन्य रूप से दो प्रकार का होता है, इसका उपस्थापन करके प्रसङ्गानुसार सन्निकर्ष के भेद भी स्पष्ट किये गये हैं।

आपने क्या सीखा

- प्रत्यक्ष प्रमाण के विविध प्रकारों का आलोचन
- सविकल्पक तथा निर्विकल्पक के भेद को जाना,
- बुद्धि आदि वृत्ति भेदों को जाना,
- जीव तथा जीव साक्षी ईश्वर तथा ईश्वर साक्षी को जाना,

पाठान्त प्रश्न

1. चैतन्याभिव्यञ्जक वृत्ति का वर्णन कीजिए।
2. चैतन्य अभिव्यञ्जिकवृत्ति के चार प्रकारों का प्रतिपादन कीजिए।
3. सविकल्पक ज्ञान को प्रकट कीजिए।
4. निर्विकल्पक ज्ञान को प्रकट कीजिए।
5. जीव का वर्णन कीजिए।
6. जीवसाक्षी का वर्णन कीजिए।
7. ईश्वर का वर्णन कीजिए।
8. ईश्वर साक्षी का वर्णन कीजिए।
9. ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर ये कौन हैं?
10. सन्निकर्ष का आश्रय लेकर के प्रबन्ध की रचना कीजिए।

ध्यान दें:

11. इन्द्रियजन्यादि प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
12. इन्द्रिय विषय देश को जाती है अथवा नहीं इसका वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 7.1

1. चैतन्याभिव्यञ्जक वृत्ति चार प्रकार की होती है। 1) संशय 2) निश्चय 3) गर्व तथा 4) स्मरण।
2. निश्चय आकार वाले अन्त: करण की वृत्ति ही बुद्धि कहलाती है।
3. गर्वाकार अभिमान वाली अन्त: करण की वृत्ति ही अहङ्कार होती है।
4. स्मृति आकार वाली अन्त: करण की वृत्ति ही चित्त होती है।
5. संशयाकार अन्त: करण की वृत्ति ही मन होता है।
6. मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तं करणान्तरम्।
संशयो निश्चयो गर्व: स्मरणं विषया इमे।
7. बुद्धि का विषय अपूर्व होता है चित्त का विषय पूर्व अनुभूत होता है अर्थात् अपूर्व नहीं होता है।इस प्रकार के विषय भेद से बुद्धि तथा चित्त में भेद होता है।
8. मन का विषय बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों ही होते हैं अहङ्कार की तो अनात्मोपरक्त आत्मा होती है इस प्रकार मन तथा अहङ्कार विषय भेद होता है।
9. वैशिष्ट्य अवगाहि ज्ञान सविकल्पक होता है
10. यह घट है इस प्रकार सविकल्पक ज्ञान में घट तथा घटत्व में तादात्म्य सम्बन्ध भासित होता है। यह सम्बन्ध ही वैशिष्ट्य कहलाता है।
11. घट का ज्ञानवान मैं, इस प्रकार के सविकल्पक ज्ञान में तथा आत्मज्ञान में तादात्म्य संबंध ही वैशिष्ट्य के रूप में भासित होता है।
12. संसर्ग अनवगाही ज्ञान निर्विकल्पक होता है
13. वह यह देवदत्त है इस वाक्य से निर्विकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है।
14. तत्त्वमसि इस महा वाक्य से निर्विकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है।
15. अन्त: करण अवच्छिन्न जीव चैतन्य कहलाता है।
16. अन्त: करण उपहित चैतन्य जीवसाक्षी कहलाता है
17. भिन्न होता है।
18. माया से अवच्छिन्न चैतन्य ईश्वर कहलाता है।
19. माया से उपहित चैतन्य ईश्वर साक्षी कहलाता है।

पाठ-7

प्रत्यक्ष खण्ड में पत्यक्ष प्रमाण के भेद

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 7.2

1. प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का होता है। इन्द्रियजन्य तथा इन्द्रिय अजन्य भेद से।
2. अविद्या वृत्ति।
3. जो ज्ञान इन्द्रियजन्य प्रमाण वृत्ति उत्पन्न नहीं होता है अविद्या वृत्ति से उत्पन्न होती है। वह इन्द्रिय अजन्य ज्ञान कहलाता है।
4. संयुक्ततादात्म्य सन्निकर्ष
5. संयुक्ताभिन्नतादात्म्यसम्बन्ध
6. कोई भी सन्निकर्ष न ही है